ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, **PP-65-79**,YEAR-2015

जीजस क्राइस्ट के भारत प्रवास को नकारने के पश्चिमी राजनीतिक निहितार्थ

❑ डॉ0 भगवती प्रसाद पुरोहित

सारांश– *भारत शब्द बना है* ***भा+रत*** *से। 'भा' का अर्थ होता है ज्ञान अथवा प्रकाश अथवा जो सर्वत्र भास रहा है, जिसे वेदों में* ***मित्येकाक्षरंब्रह्म*** *ऊँ नाम से जाना जाता है। 'रत' का अर्थ होता है जो उस ब्रह्म को जानने या ज्ञान की साधना में लगा हुआ है अथवा उस प्रकाशमय परब्रह्म के साथ तदाकार होने की साधना कर रहा है। इस प्रकार भारत का अर्थ ज्ञान की साधना में रत रहने वाले व्यक्ति से अभिप्रेत हुआ। यही कारण भारत भूमि के प्रति अनादिकाल से आकर्षण का रहा है।*

परमसत्ता को वेदों में 'ब्रह्म' के नाम से सम्बोधित किया गया है। यह ब्रह्म शब्द आत्मा या प्रजापति ब्रह्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है। भारतीय दर्शन के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति भगवान नारायण के नाभिकमल से हुई है और वे सम्पूर्ण दृश्य–अदृश्यमान ब्रह्माण्ड के उत्पन्नकर्ता, संचालक और संहारकर्ता GOD (Genrater,Operater,Distroyer) हैं। इन तीनों शक्तियों का मूल स्रोत भगवान नारायण को बतलाया गया है। इन्हीं नारायण की स्तुति में समस्त वेद, पुराण, उपनिषद्, आरण्यक्, ब्राह्मण ग्रन्थ, धर्मसूत्र, श्रौत–सूत्र आदि ग्रन्थ हैं। जो कि यह बतलाते हैं कि– व्यक्ति उस परब्रह्म परमात्मा नारायण को कैसे प्राप्त कर सकता है, उसका स्वरूप कैसा है? वह इस जगत की रचना क्यों करता है और फिर कैसे संहार करता है? भगवान नारायण की यही विशिष्टता उसे समस्त जड–चेतन जीवों के आकर्षण का केन्द्र बनाती है। क्योंकि दुनिया के प्रायः प्रत्येक पंथ और सम्प्रदाय इस बात को स्वीकारते हैं कि हम सभी उस परमसत्ता के अंश मात्र हैं तथा सबकी उत्पत्ति और लय वही परम सत्ता है, जिसे वेद में परमपुरुष कहा गया है तथा ऋग्वेद के दशवें मण्डल का 90 वां सूक्त जिसकी स्तुति करता है। चूंकि भारतीय वैदिक दर्शन विश्व का सर्वप्रथम और प्राचीन दर्शन है जो कि बड़ी स्पष्टता और व्यापकता से परमात्म तत्त्व जिसे 'ओउमकार' 'ऊँ' या 'नारायण' कहा गया है, का दिग्दर्शन कराता है। यही कारण है कि विश्व में प्राचीनकाल से ही ज्ञान पिपासुओं के लिए भारतवर्ष और उसमें भी देवभूमि उत्तराखण्ड में स्थित श्री बदरिकाश्रम विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसीलिये भी श्रीबदरिकाश्रम प्राचीन काल से विश्व के दार्शनिकों, चिन्तकों और ज्ञान पिपासुओं की साधना का केन्द्र रहा है।

भारतीय पौराणिक दर्शन के अनुसार प्रायः समस्त ऋषि–मुनि भगवान नारायण की शरण में जाकर ही ऊर्ध्वगामिता को प्राप्त हुए हैं। इसीलिए भी प्राचीनकाल से साधना हेतु श्री बदरिकाश्रम में प्रवास एक सामान्य अनिवार्यता या अपरिहार्यता रही है। चूँकि भगवान को जानने के लिए एक मात्र साधन वेद हैं, इसलिए वेद के तत्त्वज्ञान को जानने के लिए भी साधक बदरिकाश्रम आते रहे हैं। चूंकि वेद शब्द की व्युत्पत्ति विद् धातु से हुई है। जिसका अर्थ होता है जानना। इस प्रकार उस परमात्मतत्त्व को जानने का जो स्रोत है वह 'वेद' कहलाया। भारतीय तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने अपने युगों–युगों की साधना और अनुभव के द्वारा ब्रह्माण्ड के जिन रहस्यों को जाना, उन रहस्यों को उन्होंने वेदों के रूप में संहिताबद्ध किया। इस प्रकार मनुष्य मात्र के लिए वेद उस परब्रह्म नारायण को जानने का एक सरल माध्यम बन गये। फिर भी वेदों का जटिल रहस्य समझ पाना सामान्य मनुष्य की क्षमता से परे था। इसलिए परमात्मा को प्राप्त करने के साधन इन वेदों को जानने के लिए दक्ष गुरु की आवश्यकता अनुभव की गयी। नतीजतन उस परमात्म–तत्त्व को जानने की गुरु शिष्य परम्परा चल निकली।

विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर (चमोली), उत्तराखण्ड, भारत

प्रायः वेदों के जानकार समस्त दक्षगुरु ऋषिमुनियों के रूप में श्री बदरिकाश्रम में ही भगवान नारायण के सानिध्य में साधनारत रहते थे। इसीलिए भी प्राचीन काल में प्रभु प्राप्ति हेतु प्रायः समस्त साधक श्रीबदरिकाश्रम में ऋषियों की शरण में जाते थे। यहाँ वे ऋषियों के निर्देशानुसार ही जीवन यापन करते थे तथा योगमार्ग में प्रवृत्त होकर अष्टांग योग के द्वारा गहरी समाधि में प्रवृत्त होते थे, जिसमें प्रवेश हेतु कठोर अनुशासन पहली शर्त थी। स्वेच्छाचारिता के लिये प्रभु की साधन में कोई स्थान नहीं था। अगर किसी शिष्य ने योगमार्ग में प्रवृत्त होकर बीच में स्वेच्छाचारिता से आचरण किया तो उसकी साधना भंग हो जाती थी। जिसे योग भ्रष्ट कहा जाता था। ऐसे योगभ्रष्ट योगी परमात्मा को प्राप्त न होकर पुनः मृत्युलोक के श्रेष्ठ कुलों में जन्म लेकर लोक प्रसिद्ध तो होते थे–

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।

(गीता–6/41–42)

लेकिन उन्हें जानने योग्य परमात्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं होती थी गौतम बुद्ध इसका उदाहरण है। जबकि उनके समकालीन अनेक साधक योगी इन्द्रिय विहीन होकर परमात्म तत्त्व को प्राप्त हो गये थे। जिसका वर्णन महाभारत के शान्तिपर्व में विस्तार से दिया गया है (मोक्षधर्म पर्व–336/28–29)। लेकिन गौतम बुद्ध श्री बदरिकाश्रम में लम्बे समय तक रहने के बावजूद भी आत्मानुशासन की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाये और उनको बिना सफलता के ही वापस लौटना पड़ा। उनकी स्वेच्छाचारिता का उदाहरण उनके जीवन चरित्र पर लिखी गयी पुस्तकों में मिलता है। जहाँ वह कभी तो लम्बे समय तक निराहार रहते हैं, लेकिन खीर का कटोरा देखकर अपने मन को नहीं रोक पाते हैं और खीर का कटोरा लकपकर कर खा जाते हैं। यही नहीं कहीं पर गौतम बुद्ध इन्द्रिय निग्रह की शिक्षा देते नजर आते हैं, तो कहीं वह वैशाली की नगरवधू के मोहपाश में अपने सिद्धान्तों को तिलांजलि देते नजर आते हैं। गौतम बुद्ध से पूर्व सनातन धर्म के किसी साधक में ऐसी स्वेच्छाचारिता नहीं देखी गयी थी। क्योंकि वे राजा के पुत्र थे इसलिए राजसत्ता का मद चाहे–अनचाहे उनकी साधना में भी विक्षेप करता रहा।

गौतम बुद्ध योग की साधना के कठोर अनुशासन को नहीं झेल पाये, नतीजन उनकी इस विफलता के आक्रोश ने राजमद की प्रवृत्ति के साथ मिलकर मूल सनातन धर्म के विरुद्ध एक अघोषित बगावत शुरु कर दी। जिसको कि उनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म का नाम दे दिया। गौतम बुद्ध का राजघराने का होने और वैभवशाली होने से उनके प्रभाव में काफी प्रजा आ गयी थी। जिससे उत्साहित गौतम बुद्ध सनातन धर्म की परिभाशा और सिद्धान्तों को अपने अनुसार परिभाषित करने लगे। उनकी ये व्याख्याएं कर्मकाण्ड और रूढ़ियों में बुरी तरह जकड़े भारतीय समाज को पसन्द भी आयी। नतीजन बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने सनातन धर्म से निकलकर बौद्ध पंथ को एक आन्दोलन के रूप में प्रवृत्त किया। जिसके तहत उन्होंने न केवल सनातन धर्म को रूढ़ियों में जकड़ने वाले पण्डितों की आलोचना की, बल्कि जितनी अवैज्ञानिकता सनातन धर्म में आ गयी थी उसकी भी कठोर आलोचना की।

वास्तव में बौद्धधर्म केवल गौतम बुद्ध की साधना में विफलता का ही परिणाम नहीं था, बल्कि सनातन धर्म में प्रचलित रूढियों एवं अवैज्ञानिकता में जकड़े समाज की मुक्ति के लिए छटपटाहट का भी परिणाम था। जो गौतम बुद्ध की मृत्यु के बाद एक उग्र आन्दोलन के रूप में पूरे भारतवर्ष में फैल गया। बौद्ध अनुयायियों ने अखिल विश्व में फैले सनातन धर्म को मिटाने के लिये जगह–जगह बौद्ध स्तूपों और बौद्धमन्दिरों का निर्माण किया, साथ ही बौद्ध भिक्षुओं ने जगह–जगह बौद्धमठों का निर्माण कर बडी संख्या में बौद्ध भिक्षुओं, (धर्मप्रचारकों) को सनातन धर्म की रूढियों और परम्पराओं के उन्मूलन और बौद्ध पंथ की स्थापना के लिए जनमानस को प्रेरित करने का कार्य किया।

इसी क्रम में बौद्धों ने सनातन धर्म के शिखरतीर्थ श्री बदरिकाश्रम में, जहाँ की भगवान वेदव्यास, नारद, मार्कण्डेय आदि ऋषियों द्वारा कलियुग के प्रारम्भ में जग भगवान नारायण ने प्रत्यक्ष दर्शन देने बन्द कर

दिये तो तब उनके द्वारा चतुर्भुज नारायण की मूर्ति स्थापना की गयी थी। वहां से बौद्धों द्वारा न केवल भगवान के विग्रह को उखाड़कर तिब्बत की निर्जन गुफा थोलिंगमठ लेजाया गया, बल्कि वेदव्यास आदि समस्त ऋषियों के द्वारा लिपिबद्ध किये गये सम्पूर्ण धर्म ग्रन्थों को भी चुराकर थोलिंगमठ ले जाया गया। बौद्धों ने श्री बदरिकाश्रम की जिस पवित्र गरुड शिला पर चतुर्भुज नारायण मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी थी, उस पर बौद्ध मूर्ति स्थापित कर उसे बौद्धमठ बनाने की पुरजोर कोशिश की, लेकिन स्थानीय जनता के विरोध के कारण वे ऐसा नहीं कर पाये। तब बौद्ध आक्रान्ताओं ने भगवान नारायण की चतुर्भुज मूर्ति और दुर्लभ धर्मग्रन्थों की पाण्डुलिपियों को लूट कर सनातन धर्म को लगभग तहस–नहस कर दिया।

बौद्ध लुटेरों द्वारा भगवान की प्राण प्रतिष्ठा युक्त मूर्ति को थोलिंगमठ ले जाने पर मूर्ति के साथ भगवान अपने समस्त गणों– शेषनाग, गरुड, अष्टसिद्धि–नवनिधि आदि सहित थोलिंगमठ में विराजमान हो गये। 'थोलिंग' का अर्थ होता है, ऊपर उठना, ऊर्ध्वगामी होना अथवा हवा में लहराना। (थोलिंगमठ– इन्टरनेट से) क्योंकि भगवान नारायण आदिकाल से मानवीय प्रवृत्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाते रहे हैं। इसलिए थोलिंगमठ में जो भी बौद्ध साधक गये वे भी ऊर्ध्वगामी दिव्य साधना को प्राप्त हुए।

लेकिन बौद्धों का आचार–विचार और आहार–विहार धर्म की मूल परम्पराओं के विरुद्ध था, इसलिए भगवान उस स्थान पर रहना नहीं चाहते थे। नतीजन भगवान नारायण के श्रेष्ठ उपासक भगवान शंकर ने द्रविण देश केरल में शंकर यति के रूप में जन्म लिया। शंकरयति ने युधिष्ठिर संवत् 2642 में श्री बदरिकाश्रम में साधना कर मंत्रशक्ति से नारायण यन्त्र पर भगवान का आवाहन किया। इस प्रकार लगभग 50 वर्षों के आस–पास थोलिंगमठ में रहकर भगवान पुनः श्री बदरिकाश्रम स्थित अपने मूल निवास में विराजमान हो गये। आदिशंकराचार्य ने जिस नारायण यन्त्र में भगवान नारायण का आवाहन किया, वह नारायण यन्त्र वर्तमान में मन्दिर के गर्भगृह के मूल में स्थापित है, जिसको कि मिट्टी–पत्थर आदि से आदिशंकराचार्य द्वारा अदृश्य कर दिया गया था। ज्ञातव्य है कि वर्तमान में मन्दिर में जिस मूर्ति की पूजा की जा रही है, वह गौतम बुद्ध की वही मूर्ति है जो कि बौद्ध भिक्षुओं ने श्रीबदरिकाश्रम में बौद्धमठ बनाने के लिए तैयार की थी। (देखें–राहुल सांकृत्यायनः गढ़वाल हिमालय)

विद्वानों के अनुसार शंकराचार्य का जन्म गौतम बुद्ध की मृत्यु के 60 साल बाद हुआ था। यद्यपि शंकराचार्य परकाया प्रवेश और तंत्र विद्या में अजेय थे, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वे बौद्धों की तंत्रशक्ति और सैन्य शक्ति का सामना करने में सक्षम नहीं थे। इसलिए तिब्बत के बौद्ध आक्रान्ताओं से लड़ने के लिए उन्होंने एक निष्काम नंगी सेना का निर्माण किया जिसको वर्तमान में नागा सन्यासी कहा जाता है। यह एक किस्म से दुनिया की पहली ऐसी सेना थी, जिनके पास खोने के लिए कुछ नहीं था और पाने के लिए केवल और केवल भगवान नारायण थे। (विभिन्न शंकर दिग्विजय ग्रन्थ)

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शंकर थोलिंगमठ जाकर भगवान नारायण की उस चतुर्भुज मूर्ति को लाने में असफल रहे होंगे, जिसकी प्रतिष्ठा कृष्णद्वैपायन वेदव्यास और देवर्षि नारद आदि के द्वारा की गयी। यह नारायण की चतुर्भुज मूर्ति आज तक भारतीय जनमानस में अंकित है और आज भी उस चतुर्भुज पद्मासन में अवस्थित मूर्ति के बदरीनारायण के नाम से चित्र प्रकाशित किये जाते हैं।

श्रीबदरिकाश्रम से जब आचार्य शंकर ने भगवान नारायण का आवाहन किया तो, बौद्धतंत्र के बसीभूत उनके वाहन गरुड ने थोलिंगमठ मन्दिर के द्वार से भगवान को बाहर नहीं निकलने दिया। जनश्रुति है कि भगवान मन्दिर से कहीं बाहर न चले जांय, इसके लिए गरुड मन्दिर के द्वार पर बैठकर पहरा देने लगा था। कहा जाता है कि जब भगवान द्वार से बाहर निकलने लगे तो गरुड ने उनके सिर पर अपनी चोंच का प्रहार कर लहुलुहान किया। यही नहीं भगवान की शय्या बनने वाले शेषनाग ने भगवान के पैर बांध दिये और उन्हें बाहर जाने से रोक दिया। तब श्री बदरिकाश्रम में अपने तंत्रबल से नारायण शक्ति का आवाहन करने वाले शंकराचार्य के आवाहन पर भगवान नारायण ने

मन्दिर की छत फोड़ डाली और छत के रास्ते बाहर निकल गये। क्योंकि आकाश में उड़ के भी भगवान जा नहीं सकते थे। आकाश में भी गरुड की पहरेदारी थी। बौद्धों के तंत्र बल के सामने भगवान नारायण भी पस्त थे। यह भी भगवान की विचित्र लीला है।

भगवान नारायण ने यह लीला क्यों रची? यह वही जानें। लेकिन जैसी लीला भगवान ने अहिरावण द्वारा राम–लक्ष्मण के हरण के समय रची थी। वही लीला यहां भी जारी है, इसका क्या अंत होगा? कह नहीं सकते। पर इतना तो निश्चित है कि उन्होंने यह तंत्र विद्या बदरीकाश्रम से चुराये गये तन्त्र ग्रन्थों से सीखी थी। तब भगवान ने कैलास मानसरोवर से वापस बदरिकाश्रम जाने वाले अन्य यात्रियो के साथ श्यामकर्ण घोड़े पर सवार होकर बदरिकाश्रम की यात्रा शुरु की। कहा जाता है कि बौद्ध तांत्रिकों को भगवान नारायण के बदरिकाश्रम जाने का आभास हो गया था, लेकिन वे भगवान को पकड़ नहीं पाये। इसलिए उन्होंने रास्ते में जगह–जगह तन्त्र विद्या से अनेक बाधाएं उत्पन्न की। कहीं बर्फीले पहाडों में भयंकर दावाग्नि उत्पन की तो, कहीं वे भगवान का पीछा करते रहे। लेकिन भगवान नारायण भी तरह–तरह की लीलाएं कर बदरिकाश्रम स्थित नारायण यन्त्र में समाहित हो गये, जिसका कि बौद्ध तान्त्रिक पता नहीं लगा पाये। (प्रभदत्त ब्रह्मचारी और शिवराज सिंह रावत की श्री बदरीनाथ पर लिखी पुस्तकें)

यह भी कहा जाता है कि जब भगवान थोलिंगमठ में रहे उस अवधि में भी उनकी पूजा अभिषेक का कार्य माणा गांव के वैष्णव ब्राह्मण करते थे, जो कि बौद्धों द्वारा मूर्ति चुराने पर, अपनी जान की परवाह न करते हुए मूर्ति के साथ–साथ ही थोलिंगमठ चले गये थे। आज भी थोलिंगमठ में सतलुज नदी के किनारे एक छोटा सा गाँव है, जिसे गंगाड़ी (गंगा के तट पर निवास करने वालों को गंगाड़ी कहते हैं) गाँव कहते हैं।

क्योंकि भगवान वेदव्यास के शिष्य वैष्णव ब्राह्मण माणा गाँव में ही निवास करते थे। यह माणा गाँव विष्णुपदी गंगा के तट पर था। इसलिए इन्हें तिब्बत में भी गंगाड़ी कहते थे। माणा के 88 वर्षीय बुजुर्ग संत जीतसिंह रावत कहते हैं कि भगवान के ये पुजारी तब तक ही थोलिंगमठ में रहे, जब तक भगवान थोलिंगमठ में विराजमान रहे। ज्योंही नारायण थोलीमठ से वापस चले आये तो ये पुजारी भी वापस माणा गाँव चले आये। शायद अपने तिब्बत प्रवास के मध्य इन वैष्णव ब्राह्मणों ने भी दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए उन्हीं उपायों का सहारा लिया होगा जो कि तिब्बत में तिब्बतियों के जीने की मूल आवश्यकता थी। नतीजन शंकराचार्य ने वैष्णव धर्मभ्रष्ट इन पुजारियों को पुनः भगवान की पूजा में प्रवेश नहीं दिया और त्रोटक आदि अपने शिष्यों को भगवान नारायण का अर्चक नियुक्त किया। कहा जाता है कि दो पीढियों तक माणा के वैष्णव ब्राह्मण जो कि वर्तमान में माणा के मोल्फा नाम से जाने जाते हैं और जो आज भी मन्दिर बदरीनाथ की परम्परा से जुड़े हैं, थोलिंगमठ में रहे, जो कि औसत 50 साल के आसपास का समय बैठता है।

चूंकि सनातन धर्म के पुनरुत्थान में शंकराचार्य की बहुत बडी भूमिका रही, उन्होंने शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, षणमुगम आदि अनेक सम्प्रदायों में विभक्त सनातन धर्म को पंचपूजा की–स्मार्त परम्परा में एकताबद्ध किया। इसलिए श्रीबदरिकाश्रम में योगसाधना और परमात्मतत्त्व को प्राप्त करने की परम्परा पुनः स्थापित हुई। शंकराचार्य और उनके शिष्यों ने भगवान वेदव्यास, गौडपादाचार्य, गोविन्दपादाचार्य आदि के निर्देशन से पुनः सनातन वैदिक ग्रन्थों का पुनर्लेखन का कार्य किया, जिस कारण श्रीबदरिकाश्रम में योगसाधना की परम्परा पुनः जीवित हो उठी। (गुरुवंश पुराण)

अकेले उत्तरआम्नाय श्रीमठ (जोशीमठ) के 20 चिरंजीवी आचार्यों (शंकराचार्य के शिष्यों) का पता चलता है, जिनकी कि मृत्यु हुई ही नहीं और जो योगसाधना के द्वारा पारगामिता अर्थात् 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' (चाक्षुषोपनिषद् मंत्र– 2) को प्राप्त हुए। क्योंकि शंकराचार्य का जन्म 505 ई0 पूर्व के आसपास हुआ और वे 32 साल तक जीवित रहे। इसलिए उनकी शिष्य परम्परा के 20 चिरंजीवी शिष्यों की परम्परा जोशीमठ में प्राप्त होती है। ऐसे चिरंजीवी शिश्यों की परम्परा अन्य मठों में प्राप्त नहीं होती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक पीढ़ी की उम्र यदि 25 साल भी मानी जाय तो शंकराचार्य के जन्म से लेकर ईसा के जीवन काल तक

श्रीबदरिकाश्रम जोशीमठ में ऐसे चिरंजीवी आचार्य विद्यमान थे जो अपनी यौगिक साधना के द्वारा अमरत्त्व को प्राप्त हो रहे थे।

त्रोटको विजयः कृष्णः कुमारो गरुडः शुकः,
विन्ध्यो विशालो वक्रुलो वामनो सुन्दरोऽरुणः।
श्रीनिवासः सुखानन्दो विद्यानन्दः शिवो गिरिः,
विद्याधरो गुणानन्दो नारायण उमापतिः।
एते ज्योतिर्मठाधीशा आचार्याश्चिरजीविनः,
य एतान् संस्मरेन्नित्यं योगसिद्धिं स विन्दते।

(पं0 मायादत्त पाण्डे : ज्योतिष पीठ–परिचय, पृष्ठ– 19)

ऐसे में यह निश्चित है कि ज्ञानपिपासु ईसा, जब ज्ञान की तलाश में भारत आ सकते हैं तो भारत आकर ज्ञान के मूल स्रोत श्री बदरिकाश्रम की कैसे अनदेखी कर सकते हैं? वो भी उन परिस्थितियों में जब कि भारतीय ज्ञान व आध्यात्म का उद्‌गम ही श्री बदरिकाश्रम हो। ईसा के श्रीबदरिकाश्रम के आकर्षण का मुख्य कारण यह भी रहा है कि ईसा के जीवनकाल में श्री बदरिकाश्रम जोशीमठ ज्ञान–विज्ञान और आध्यात्म साधना के शिखर स्थल के रूप में विख्यात था।

जगन्नाथपुरी प्रवास– चूँकि शंकराचार्य केरल से 11 वर्ष की उम्र में विकट भौगोलिक दूरी को पार करते हुए तपस्या हेतु श्री बदरिकाश्रम में आ गये थे। ऐसी स्थिति में लगभग इतनी ही दूर बैतलहम से क्राइस्ट का ज्ञान की तलाश में 13 साल की उम्र में भारत पहुँचना किसी भी प्रकार आश्चर्य की बात नहीं है। वैसे भी प्राचीन भारतीय गुरुकुल परम्परा को देखें तो यह उम्र विद्याध्ययन हेतु ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुकुल में निवास की होती है। चूँकि कुछ लेखकों ने स्थल मार्ग से सिंध नदी पार करते हुए क्राइस्ट का भारत के बनारस में प्रवेश दिखाया है[1] जबकि कुछ लेखकों ने क्राइस्ट को समुद्र के रास्ते भारत आना बतलाया है। ईसा के जन्म के समय उड़ीसा में भगवान जगन्नाथ के चमत्कारों की बड़ी चर्चा थी। इसलिए बहुत सम्भव है कि जलमार्ग से ईसा ज्ञान की चाह में जगन्नाथपुरी पहले पहुँचे हों।

बनारस प्रवास– प्राचीन काल से ही गंगा के तट पर बसा हुआ शहर वाराणसी विद्वानों की नगरी के रूप में जाना जाता रहा है। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य जिस काशी में ज्ञान की प्राप्ति के लिये गये हों, उस काशी के प्रति क्राइस्ट के मन में ललक होना स्वाभाविक है। आज भी कर्मकाण्ड के क्षेत्र में आन्ध्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के ब्राह्मणों का उत्कृष्ट होने के बावजूद भी वाराणसी को ही ज्ञान–विज्ञान, धर्म–आध्यात्म की नगरी के रूप में स्वीकारना, इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि काशी की विद्वता व प्रतिष्ठा की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं।

क्राइस्ट के ज्ञान हेतु भारत के प्रति आकर्षित होने के अनेक कारण रहे हैं, जिनमें अन्य प्रमुख कारणों के साथ–साथ एक कारण यह भी रहा है कि ईसा के जन्म से पूर्व विख्यात यूनानी दार्शनिक सुकरात की भी आध्यात्मिक ज्ञान की साधना महर्षि दाण्डायन के सानिध्य में होनी बतलायी जाती है। सुकरात का प्रिय शिष्य प्लेटो जो कि भारतीय दर्शन से इतना अधिक प्रभावित था कि उसने सम्पूर्ण भारतीय योग को व्यायाम की शिक्षा के रूप में ग्रहण किया तथा सम्पूर्ण भारतीय आध्यात्मिक दर्शन को जो कि छंदबद्ध काव्य था उसे संगीत की शिक्षा के रूप में अंगीकृत किया।[2] आज भी प्लेटो से अधिक गहनता और पूर्णता से भारतीय दर्शन को अंगीकृत करने वाला दुनिया में कोई दूसरा दार्शनिक पैदा नहीं हुआ है। यह प्लेटो का ही प्रभाव था कि उसका शिष्य अरस्तू भले ही यूनान की परिस्थितियों के अनुरूप प्लेटो के दर्शन को ढ़ालने के प्रयास में लगा रहा हो लेकिन भारत के प्रति उसका आकर्षण भी कम नहीं था। स्थिति यह थी कि भारतीय ज्ञान और समृद्धि पाने के लिये उसने अपने शिष्य सिकन्दर को भारत पर विजय हासिल करने के लिए भेजा, क्योंकि तब तक अरस्तू और सिकन्दर की दृष्टि पूर्णतया भौतिक थी, इसलिए वे भारत से सिर्फ भौतिक सम्पदा ही लूटकर ले जा पाये। यह भौतिक सम्पदा व्यक्ति के साथ जाती नहीं है, यहीं रह जाती है, व्यक्ति उसे रास्ते में छोड़ जाता है। सिकन्दर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि भौतिक सम्पदा को साथ लेकर मनुष्य मंजिल नहीं पा सकता, उसकी रास्ते में ही मृत्यु हो जाती है। सिकन्दर की रास्ते में हुई मौत का मध्यपूर्व और पश्चिमी जगत में व्यापक असर पड़ा हो, इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। ये तमाम कारण भी ईसा के भारत के प्रति आकर्षण के हो

सकते हैं। वाराणसी में वेद–वेदांग के अध्ययन की अति प्राचीन परम्परा रही है। ऋषिकाल में भी काशी में अगस्त्य, भरद्वाज, वसिष्ठ आदि अनेक ऋषियों के गुरुकुलों तथा शिष्यों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। चूँकि वेद के छः अंगों– शिक्षा, निरुक्त, छंद, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण के अध्ययन की विषेशज्ञ ऋषि गुरुकुलों में परम्परा रही है, जिनमें न केवल भारतवर्ष के बल्कि सुदूरवर्ती देशों के विद्वान भी ज्ञान की साधना हेतु आते थे। यही नहीं ऋषिकालीन भारतवर्श की सीमाएं पर्सिया, यूनान, मिश्र से लेकर जावा–सुमात्रा, बोर्नियो, वर्मा आदि तक फैली थी। तब किम्पुरुष खण्ड पर भी भारत का पूर्ण अधिपत्य रहा होगा, इसलिए रुद्र ऋषि ने कैलास–मानसरोवर को अपनी तपस्या और निवास के लिए उपयुक्त पाया होगा।

बनारस के इस आकर्षण से आकर्षित होकर निश्चित रूप से क्राइस्ट ने जगन्नाथ पुरी के बाद काशी का रुख किया होगा जैसा कि अनेक यूरोपीय विद्वानों ने लिखा है। निकोलस नोटोविच ने भी अपनी पुस्तक में कहा है, जिजस ने देजैन ;क्रंपदमद्ध के भटके हुए प्रशंसकों का साथ छोड़ दिया और जगन्नाथपुरी की और चला गया जो कि उडीसा के अधीन था (जहॉ का शासक ओरीस्श था) जहॉ उसका ब्रह्मा के वाइट प्रिस्टस से भरपूर स्वागत हुआ।[3] उन्होंने ईसा वेद पढ़ना और समझना सिखाया। पवित्र धर्म ग्रन्थ की व्याख्या करना, मनुष्य के शरीर से बुरी आत्माओं को निकालना और फिर से उसे वास्तविक अस्तित्व में लाना यह सब ईसा ने उन लोगों से सीखा।[4] उसने 6 साल जगन्नाथ , बनारस और अन्य पवित्र शहरों में बिताये। सभी उससे प्यार करते थे, क्योंकि ईसा, सभी के साथ प्यार से रहता था। चाहे वह वैश्य हो या शूद्र, उन्हें वह धर्म ग्रन्थ के बारे में बताता था और राह दिखाता था।[5] निकोलस की बातों का रामकृष्ण के शिष्य अवैद्यानन्द (निकोलस रोलरिक) ने भी समर्थन किया है।[6]

बदरिकाश्रम प्रवास– चूँकि बनारस पवित्र गंगा नदी के तट पर बसा है। यह गंगा विष्णुपदी कहलाती है। विष्णु के पाद प्रक्षालन से पवित्र हुआ जल जो कि शिव द्वारा अभिमंत्रित ब्रह्मा के कमण्डलु से निःसृत हुआ था, वह श्रीमुख पर्वत पर गिरने के साथ ही सात धाराओं में विभक्त हुआ। विद्वानों के अनुसार गंगा की इन सात धाराओं के प्रदेष देवभूमि उत्तराखण्ड को ही सप्तसिन्धु के नाम से पुराणों में सम्बोधित किया गया है। गंगा के इन तटों पर वैदिक ऋषि साम गायन किया करते थे तथा गंगा की छह धाराएं प्रधान धारा विष्णुपदी अलकनन्दा में जहां–जहां पर मिली, उन–उन स्थानों पर वैदिक ऋषियों द्वारा विशाल यज्ञों का आयोजन किया गया था, जिसके कारण इन स्थानों को 'प्रयाग' के नाम से सम्बोधित किया गया। देववाणी संस्कृत में प्रयाग शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृस्टः याज्ञ यस्य सः प्रयागः से हुई है। इसलिए इन प्रयागों अर्थात् ऋषि–मुनियों की तपःस्थलियों को तीर्थ की मान्यता प्राप्त हुई।

गौतम बुद्ध का बदरिकाश्रम प्रवास– 'तीर्थ' का अर्थ होता है 'तारने वाला', अर्थात् धरती का वह भू–भाग जो मनुष्य को इहलौकिक और पारलौकिक बन्धनों से तार दे वह उत्तराखण्ड तीर्थ ही नहीं महातीर्थ है। पुराणों और धार्मिक ग्रन्थों में उत्तराखण्ड की भारी महिमा के कारण ऋषि–मुनियों के लिए ही नहीं बल्कि काशी के विद्वानों के लिए भी उत्तराखण्ड में तीर्थ सेवन जीवन का सबसे बडा लक्ष्य रहा है। यही कारण है कि आज भी काशी के लोगों से ज्ञान–विज्ञान की बातें करो तो वो कहते हैं कि ज्ञान तो बदरिकाश्रम हिमालय में प्राप्त होता है। इसी वजह से गौतम बुद्ध भी गंगा के किनारे–किनारे दुर्गम नदी घाटियों को और पहाड़ियों को पार करते हुए श्रीबदरिकाश्रम आये होंगे। गौतम बुद्ध के बाद दूसरे महाविद्वान शंकराचार्य भी इसी रास्ते श्रीबदरिकाश्रम आये थे। तब बनारस से क्राइस्ट भी ठीक इसी रास्ते श्रीबदरिकाश्रम के दर्शन के लिए आये होंगे, इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस बात के प्रमाण स्वयं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने लेखों के जरिये सिद्ध किये हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने ईसा के मार्ग का सूक्ष्म वर्णन करते हुए ऋषिकेष–बदरीनाथ मार्ग पर वसिष्ठ गुफा के निकट ईसा गुफा की पहचान की है।[7] जिससे यह सिद्ध होता है कि क्राइस्ट श्री बदरिकाश्रम जाने वाले परम्परागत रास्ते से ही अन्य सह यात्रियों के जैसे ही बदरिकाश्रम को गये थे। अपनी बदरिकाश्रम यात्रा के मध्य ईसा ने निःसन्देह उत्तराखण्ड के अनेक तीर्थों का सेवन किया होगा, अनेक देवालयों

के दर्शन किये होंगे तथा अनेक प्रयागों पर स्नान कर अपने इहलौकिक और पारलौकिक मुक्ति की कामना की होगी। गंगा के किनाने–किनारे बदरिकाश्रम जाना इस बात को प्रमाणित करता है।

चूँकि ईसा के समय तक श्रीबदरिकाश्रम में शंकराचार्य के शिष्यों द्वारा 'मृत्योर्मा अमृतं गमय' (चाक्षुषोपनिषद् मंत्र– 2) की साधना जारी थी शंकराचार्य के शिष्य पारगामिता को प्राप्त हो रहे थे, ऐसे में निःसन्देह क्राइस्ट ने भारत प्रवास के 18 सालों में से अधिकांश समय गौतम बुद्ध और शंकराचार्य की भांति श्रीबदरिकाश्रम में बिताये होंगे। चूंकि जब आदि शंकराचार्य जो कि जन्मजात सिद्ध थे उनको भी युधिष्ठिर संवत 2641 से 2647 तक 6 साल लगातार यहां साधना करनी पड़ी, तब अन्य का तो कहना ही क्या। इसी बदरिकाश्रम में ईसा का दण्ड धारण करना इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने यहां अवश्य ही दीक्षा ग्रहण की होगी। चूंकि ईसा के दण्ड की लम्बाई कन्धे तक थी। इससे यह प्रतीत होता है कि श्री बदरिकाश्रम के ऋषियों ने ईसा को क्षत्रिय वर्ण के अनुसार ही दीक्षा दी होगी। क्योंकि सन्यास दीक्षा का दण्ड व्यक्ति के सिर के बराबर होता था और तब सन्यास दीक्षा केवल ब्राह्मणों को ही देय थी। अन्य वर्णों के व्यक्ति अपने वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण निर्वहन करके ब्राह्मण योनि में जन्म लेकर अपने को पूर्वजन्म के संस्कारों के अनुसार मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर करते थे।

ऐसे में अन्य जातियों खासकर क्षत्रिय, वैष्य, षूद्र और मलेच्छ जो भी अपनी उस वृत्ति को छोडकर ऊर्ध्वगामी धर्म के मार्ग पर श्रद्धापूर्वक अग्रसर होता था उसे भी ब्रह्मचर्य की अवस्था में दण्ड धारण कराया जाता था। यहां दण्ड का तात्पर्य केवल लकडी के डण्डे से नहीं, बल्कि मन, कर्म, वचन, इन्द्रिय निग्रह और अष्टांग योग के यम–नियमों का पालन करना था। तथा इन्द्रियों की स्वेच्छाचारिता पर कठोर अंकुष लगाना या उन्हें दण्डित करना था। यही कारण है कि श्री बदरिकाश्रम में आकर गौतम बुद्ध और शंकराचार्य की भांति क्राइस्ट ने योग मार्ग में प्रवृत्त होने की दीक्षा प्राप्त कर ली थी और उस अनुष्ठान का पालन करते हुये उन्होंने दण्ड ग्रहण कर लिया था। ऐसा उल्लेख काश्मीरी विद्वान मिर्जा गुलाम अहमद (संस्थापक अहमदिया मुस्लिम सम्प्रदाय) भी कहते है, वे लिखते हैं– Jesus was named the messiah becover he was a great treveller,. He was a wollen scary over his hed, & a woolen cloth. On his person . carring a staff in his hand, he used to wonder from country to country & city to city.[8]

यही नहीं श्री बदरिकाश्रम में क्राइस्ट ने वेद, पुराण, धर्म ग्रन्थ, धर्मसूत्रों आदि आर्ष साहित्य का गहन अध्ययन किया[9] और वैष्णव धर्म को पूर्ण रूप से अंगीकृत किया। चूँकि वैष्णव धर्म में विष्णु की श्रेष्ठता वर्णित करते हुए कहा गया है कि विश्व के अणु–अणु मे जो व्याप्त है– वह विष्णु है, संहारक देव शिव हैं, और उत्पन्न करने वाले भगवान ब्रह्मा हैं। सनातन धर्म के इन तीन देवों के कारण ही **(Genrater,Operater,Distroyer) GOD** शब्द की उत्पत्ति हुई है। सीधी सी बात है इन तीन शक्तियों का मूल स्रोत भगवान नारायण हैं। इसलिए क्राइस्ट हर जगह भगवान नारायण अर्थात् परमपिता परमेश्वर का उद्घोष करते हैं और कहते हैं कि मैं परमपिता परमेश्वर की संतान हूँ।[5]

क्राइस्ट वैष्णव धर्म में इतना रंग गये थे कि उनके उपदेशों में वैष्णव धर्म की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। चाहे अहिंसा का विषय हो, दया, प्रेम, त्याग या सेवा का विषय हो, ऐसा प्रतीत होता है कि 'इसाई धर्म' वैष्णव धर्म का क्राइस्ट संस्करण है। अनेक भारतीय सन्यासियों ने अपने ग्रन्थों में ईसा को भारतीय संत माना है।[6] जहाँ भारतीय संतों का उल्लेख है उस सूची में ईसा को भी सम्मिलित किया है।

क्राइस्ट वैष्णव धर्म में इतना रंग गये थे कि उनके उपदेशों में वैष्णव धर्म की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। चाहे अहिंसा का विषय हो, दया, प्रेम, त्याग या सेवा का विषय हो, ऐसा प्रतीत होता है कि 'इसाई धर्म' वैष्णव धर्म का क्राइस्ट संस्करण है। अनेक भारतीय सन्यासियों ने अपने ग्रन्थों में ईसा को भारतीय संत माना है।[6] जहाँ भारतीय संतों का उल्लेख है उस सूची में ईसा को भी सम्मिलित किया है।

विख्यात लेखक दण्डी स्वामी शिव बोधाश्रम ने श्री गुरुवंशपुराण में, पुरीपीठाधीश्वर

कृष्णभारती के विद्यार्थी जीवन का वर्णन करते हुए लिखा है कि– ''जगत गुरुजी इसाईयों के कालेज में पढते थे। वहाँ बाइबिल पढाई जाती थी, प्रोफेसर ने ईसा का चरित्र पढ़ाते हुए कहा– ईसा दस वर्ष तक अपने देश में रहे। उनके चार प्रधान शिष्य थे, ईसा को अपने देश के धर्मगुरुओं से आध्यात्मिक, धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान नहीं हुआ तब उन्होंने पूर्व की यात्रा आरम्भ की। विदेश यात्रा में मैथ्यूज तथा जॉन उनके साथ गये, मार्क तथा ल्यूक साथ नहीं गये। ईसा के तेरह वर्षों से लेकर तीस वर्षों तक की आयु का चरित्र नहीं मिलता है, इसलिए प्रोफेसर ने बीच का चरित्र नहीं सुनाया। किसी छात्र ने कोई शंका नहीं की, परन्तु स्वामी जी ने प्रोफेसर साहब से पूछा कि आपने ईसा के बीस वर्ष के बीच की आयु का हाल नहीं बताया, प्रोफेसर को ज्ञात नहीं था इसलिए उन्होंने उत्तर नहीं दिया। फिर पूछा 20 वर्ष में उन्होंने क्या किया? प्रवक्ता ने उत्तर दिया–लेखक तीस वर्ष से ही उनका चरित्र जानते होंगे। इन्होने शंका की कि आरम्भ से दस वर्ष का हाल कैसे लिखा? तब प्रोफेसर ने कहा इसका वर्णन बाईबिल में नहीं है। तब कृष्णभारती जी ने दूसरे प्रोफेसर से पूछा– उन्होंने उत्तर दिया बाइबल में अपनी इच्छा से लिखी हुई बातें नहीं पायी जाती। भगवान् की प्रेरणा से लिखी हुई बातें हैं। तब छात्र ने पूछा, भगवान ने बीच के 20 वर्ष का हाल क्यों नहीं लिखवाया प्रोफेसर कुपित हो गये। शंका ज्यों की त्यों बनी रही।

चौथे वर्ष बी. ए. फाइनल में तीसरे प्रोफेसर आये। वे शांत और पिछले प्रोफेसरों से विद्वान थे। कृष्णभारती ने उनसे पूछा। प्रवक्ता ने इनको अपने पास बुलाया। तब बालक सोचने लगा कि पिछले प्राध्यापक ने तो क्रोध ही किया था किन्तु लगता है यह पीटेंगे भी, वे डरते हुए प्रोफेसर के पास गये। तब प्रोफेसर ने बालक कृष्ण भारती की पीठ पर हाथ फेरकर स्नेह से कहा 'बाईबिल में जान बूझ कर बीस वर्ष का वर्णन छोड़ दिया गया है'। इन 20 वर्षों में भारत आकर उन्होंने धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया।

ईसा के इस गुप्त चरित्र को 140 वर्ष तक छिपाया गया। ईसा की मृत्यु के बाद 140 वर्ष पश्चात् सभा हुई। प्रोफेसर ने कहा ईसा परम तीव्र बुद्धि के बालक थे। वे आठ–नौ वर्ष की अवस्था में ही गूढ़ तत्व सम्बन्धी प्रश्न करते थे। वहां के विद्वान इसका उत्तर नहीं दे सके। तब ईसा ने पूर्व की यात्रा आरम्भ की और वे चीन, जापान गये। वहां के बौद्ध भिक्षुकों से उन्हें केवल सामान्य प्रश्नों का ही उत्तर प्राप्त हुआ। गूढ़ प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला। वहां के बौद्ध गुरुओं ने कहा कि हमारे धर्म के संस्थापक बुद्ध की जन्म भूमि भारत है। अतः आप भारत जाएं। वे भारत आये सन्तों से सम्पर्क किया। यहाँ पर आकर उन्हें सन्तोष जनक उत्तर प्राप्त हुआ। उन्होने वैष्णव सन्तों को गुरु बनाकर दीक्षा ली। फिर अपने देश में जाकर ईसा ने वैष्णव धर्म का प्रचार किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् ईसाई सोचने लगे। यदि हम भारत से उधार लिए धर्म का प्रचार करेंगे तो हमारा महत्त्व कम होगा। हमारे धर्म का प्रचार नहीं होगा। उस समय एक धर्म सभा बुलाई गयी। इस सभा में यह समस्या रखी गयी। अन्त में यह निश्चित हुआ कि बाइबिल से ईसा का बीस वर्ष का चरित्र निकाल दिया जाय। उस सभा में एक व्यक्ति ने विरोध किया और बाकी सभी ने प्रस्ताव का समर्थन किया। दूसरे लोगों ने यही प्रचार किया कि ईसा कभी भारत नहीं आये। वे पश्चिम देश के थे वहीं प्रचार किया, तब हमारा विषेश आदर होगा।

उस सभा में जो सच्चा व्यक्ति था उसका नाम एथेनिसिस था। वे ईसा के विशेष शिष्यों में थे। उन्होने अपने ग्रंथ में ईसा के ज्ञान–भक्ति की शिक्षा लिखी है। परन्तु उस सभा में झूठों का बहुमत होने के कारण उनकी सच्ची बात नहीं मानी गयी। तब एक व्यक्ति ने कहा– 'यह मनुष्य सत्य के बल पर अवश्य जीतेगा।'

ईसा ने भारत में भक्त प्रहलाद की कथा सुनी थी वे उसके प्रशंसक थे। पूर्ण सत्यनिष्ठ तथा गीता के परम् भक्त थे। इन्हीं कारणों से कई लोग इनसे द्वेष करने लगे, उन्होंने कहा कि मैं और मेरे पिता एक हैं। ईसा अपने को ईश्वर का पुत्र मानता है, इस बात से चिढ कर असभ्य और बर्बर लोगों ने उन्हें सूली पर चढा दिया। रोम में ईसा तथा उनके शिष्यों की मूर्तियां हैं। उन सबके मस्तकों पर वैष्णव तिलक है। यह बात महाराज जी को तीसरे डिग्री कॉलेज के प्रवक्ता ने

बतलाई। पहले तीन प्रवक्ताओं ने अपने देश में जाकर इनकी शिकायत की उस प्रवक्ता ने कहा सत्य का विरोध मैं सहन नहीं कर सकता। अतः उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। अतः इस प्रमाण से भी इसाई धर्म वैष्णव धर्म की एक शाखा ही प्रतीत होती है।

इस बात को श्री स्वामीरामतीर्थ जी ने भी 'कम्प्लीट वर्क्स' के 'इण्डिया दि मदरलैण्ड' नामक पुस्तक के सातवें भाग के पंचम संस्करण जो 1932 ई. में प्रकाशित हुआ था, उसके पेज. 86 से लेकर 198 तक में कही है। ये बातें श्रीस्वामीरामतीर्थ जी के अमेरिका में दिये हुये 29 जुलाई 1904 ई. के भाषण से उद्धृत की गयी हैं। स्वामी रामतीर्थ जी ने रूसी लेखक 'निकोलस नोटोविच्' की फ्रांसिसी भाषा में लिखी पुस्तक की चर्चा की है। जिसका अंग्रेजी में अनुवाद 'दि अननोन लाइफ ऑफ जीजस' में हुआ है। यही बात कल्याण के गीता तत्त्वांक अगस्त 1939 में मुद्रित महात्मा श्री बालकराम जी विनायक ने भी लिखी है।''

बाईबिल में उल्लेख है कि ईसा के पास ऐसी शक्ति थी कि वह तूफान को रोक देते थे, समुद्र की उत्ताल तरंगों को शान्त कर देते थे आदि आदि। ऐसी शक्ति सिर्फ पंचतत्त्वों की साधना से ही प्राप्त हो सकती है और यह विद्या सिर्फ भारतीय संत–महात्माओं के पास थी। जो कि अष्टांग योग के मार्ग पर साधना के फलस्वरूप ही प्राप्त होती थी। दुनिया के किसी अन्य धर्म में ऐसी साधना की विधि प्राप्त नहीं होती है। भारत में आज भी अनेक इस प्रकार के संत हैं जो न केवल पंच तत्त्वों पर नियन्त्रण करते हैं बल्कि सूर्य, चन्द्रमा, बादल, वर्षा आदि को अपने आदेशों पर चलाते हैं। वे चाहें तो किसी पर्वत को गिरा दें। कहीं भी बादल को आदेश दे कर भारी वर्षा करा दें और कहीं भी अग्निपात कर दें आदि आदि।[7] ऐसे ही दो–तीन संतों से मैं खुद भी मिला हूं। इन संतों की चरणरज से मेरा निवास पवित्र हुआ है। एक ऐसे ही संत गजानन पुरी हैं, जो हिमालय में कभी भी और कहीं भी, किसी भी रूप में प्रकट हो जाते हैं। इनकी उम्र सदा एक जैसी दिखती है। हमेशा 18–20 साल के नजर आते हैं। इनकी उम्र का कोई पता नहीं है। आजकल कहां हैं इस बात का भी पता नहीं है। ऐसे एक अन्य महात्मा जिन्होंने मेरे आग्रह पर भी अपना नाम नहीं बतलाया सिर्फ 'पी पुरी' बतलाया है, जो 90 साल के आस–पास के प्रतीत होते हैं। आकाश मार्ग से विचरण करते रहते हैं, ये ही मुझ पर भी कभी न कभी कृपा करेंगे। ऐसा इस जन्म में या फिर मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा कह नहीं सकता, पर इतना विश्वास है कि उन्होंने मुझ से वादा किया है। अलबत्ता में आज तक उनके निर्देशों का अनुपालन कर उनके शिष्यत्त्व की पात्रता नहीं प्राप्त कर पाया हूं।

धरती पर इस साधना का एक मात्र स्थान श्री बदरिकाश्रम है। यहां इस साधना को पूरी करने के बाद अष्ट सिद्धि और नव निधियों से पूर्ण महात्मा अधिकांश तया कैलास की ओर चले जाते हैं। श्रीबदरिकाश्रम में इस साधना में कम से कम 8–10 साल लग जाते हैं। जिससे यह प्रतीत होता है कि क्राइस्ट श्री बदरिकाश्रम में आठ–से दस वर्ष तक साधनारत रहे थे। इस प्रकार देवभूमि उत्तराखण्ड़ स्थित बदरिकाश्रम में ही क्राइस्ट ने आत्मवत सर्वभूतेषु के आलोक में अहिंसा की शिक्षा ग्रहण की। इसके अतिरिक्त अपने शत्रु से भी प्यार करने की शिक्षा अर्थात आत्मा के अविनाशी स्वरूप की शिक्षा भी क्राइस्ट को बदरिकाश्रम में ही प्राप्त हुई। इसीलिए क्राइस्ट को जब सूली पर चढ़ाया गया तब भी उन्होंने कहा 'हे ईश्वर इन्हें माफ कर क्योंकि इन्हें ज्ञान नहीं ये क्या कर रहे हैं।'

लिंगपुराण में भी स्पष्ट उल्लेख है कि दूसरे मनुष्य को भी ईश्वर के समान समझो! क्योंकि क्योंकि सभी एक परमात्मा के अंश हैं।[8] इसीलिए ईसा ने कहा कि मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। बौद्ध लामा कहते हैं कि क्राइस्ट ने अहिंसा की शिक्षा उनके गुरुओं से सीखी, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि बौद्ध धर्म स्वयं अहिंसा को पूर्णतः नहीं समझ पाया था अगर वह इसे समझ पाता तो उनके अनुयायी कभी भी मुस्लिमों की तरह हिन्दू मन्दिरों को तोड़ कर उनके स्थान पर मठों, बिहारों का निर्माण नहीं करते। इतिहास में इसके कई उल्लेख मिलते हैं।

सनातन धर्म समग्र रूप से एक वैज्ञानिक दर्शन है जिसकी वैज्ञानिकता को समय–समय पर देवताओं और ऋषियों ने परिष्कृत किया है। द्वापर के अंत में भगवान कृष्ण के गोलोक धाम सिधारने और

कलियुग के प्रवेश के 3000 साल से अधिक का समय गुजर जाने के मध्य सनातन धर्म को परिष्कृत करने वाले देवता और ऋषिगण अदृश्य होते गये, जिससे सनातन धर्म की वैज्ञानिकता के प्रति जन मानस की अनविज्ञता बढती चली गयी।

उपासना पद्धतियों की वैज्ञानिकता का ज्ञान धीरे–धीरे लुप्त होता चला गया। स्थिति यह हो गयी कि भारतीय समाज परम्पराओं की वैज्ञानिकता के प्रति पूर्ण विस्मृत होता चला गया और ये परम्पराएं पूर्णतया अवैज्ञानिक, जटिल रूढ़ियों के रूप में जानी जाने लगी। सनातन धर्म के प्रतीक तीर्थ–मन्दिरों में ब्राह्मणत्त्व का निर्धारण जन्म से होने लगा, कर्म की परम्परा गौण होती चली गयी। वर्णों के क्रमिक उत्थान प्रोन्नत और अवनत की गतिमान परम्परा अवरुद्ध हो गयी। नतीजतन वर्ण व्यवस्था में जटिलता आ गयी। अनाचार युक्त कर्म के पश्चात जहॉ विप्र वर्ण से अवनत होकर व्यक्ति शूद्र वर्ण में चला जाता था और शूद्र वर्ण में सेवा आदि कार्य से व्यक्ति विप्रत्त्व को प्राप्त करता था, वह परम्परा ही ठप्प हो गयी। फलस्वरूप जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होने लगे। धर्म के उस अनुशासन से, जिससे की व्यक्ति का वर्ण निर्धारित होता था वह अनुशासन लुप्त हो गया। नतीजतन उच्च वर्णों की स्वेछाचारिता और निम्न वर्णों की आचरण हीनता के कारण पूरे सनातन धर्म की सामाजिक व्यवस्था का ताना–बाना बुरी तरह चरमरा गया।

गौतम बुद्ध राज खानदान से होने के कारण श्री बदरिकाश्रम में ऋषियों की शरण में आकर मुक्ति हेतु सन्यास दीक्षा चाहते रहे होगें, लेकिन तत्कालीन धार्मिक परम्पराओं में सन्यास केवल ब्राह्मणों को देय था। नतीजतन गौतम बुद्ध जिस सनातन धर्म में जन्मे थे उस सनातन धर्म के पुनरुद्धार के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किये होंगे, इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन जब गौतम बुद्ध को भी यह लग गया होगा कि वह सनातन धर्म के शीर्ष पर काबिज मूर्खों और अज्ञानियों के गठजोड को नहीं तोड़ पायेंगे, तो तब इसी बिवशता में उन्होंने अपनी साधना का मार्ग निर्धारित किया होगा, जो कि लगभग सनातन धर्म के ही सिद्धान्तों को लेकर आगे बढे हैं। क्योंकि इससे पूर्व भी महावीर जैन आदि तीर्थांकरों द्वारा भी सनातन धर्म की वैज्ञानिकता को स्थापित करने की कोशिश में विफल होने के कारण ही जैन मत का प्रारम्भ हुआ होगा। बौद्ध मतावलम्बियों के और खासकर तिब्बत में पूर्व जन्म के रहस्यों को जानने वाले लामाओं के अनुसार क्राइस्ट खुद बुद्ध के अवतार थे, जिनको कि वह गौतम बुद्ध की शिष्य परम्परा में 23 वें शिष्य के रूप में स्वयं गौतम बुद्ध जन्म लेकर आया मानते हैं।[9]

चूँकि बुद्ध के अनुयायियों ने भी प्रायः उपासना पद्धति में और प्रचार में उसी रूढ़िवादिता, कट्टरता, अवैज्ञानिकता, हिंसा, आक्रमकता को अपनाया जिसका विरोध करते हुए बुद्ध ने सनातन धर्म से अलग परम्परा शुरु की थी। नतीजतन क्राइस्ट बौद्ध पंथ को भी अंगीकृत नहीं कर पाये और उनके दिलो–दिमाग में श्रीबदरिकाश्रम में रहते हुए बौद्ध पंथ के प्रति भी एक असहमति का भाव बना रहा। इसीलिए उन्होंने श्री बदरिकाश्रम में रहकर पुनः शंकराचार्य और उनके पारगामी शिष्यों एवं ऋषियों के द्वारा संकलित भाष्यों, टीकाओं और सूत्रों का अध्ययन किया होगा। सनातन धर्म के मूल ग्रंथ और भगवान नारायण की वेदव्यास द्वारा गरुड शिला पर स्थापित चतुर्भुज मूर्ति को बौद्ध अनुयायी गौतम बुद्ध की मृत्यु के तत्काल पश्चात् श्रीबदरिकाश्रम से थोलिंगमठ ले गये थे। ईसा के दिलो–दिमाग में इन दिव्य ग्रंथों के अध्ययन की उत्कंठा व्याप्त रही होगी। इस उत्कंठा का एक कारण यह भी हो सकता है कि गौतम बुद्ध की भांति ईसा को भी बदरिकाश्रम के ऋषियों ने वर्णाश्रम धर्म में उचित न होने के कारण सम्भवता सन्यास दीक्षा नहीं दी होगी। क्योंकि सन्यास एक अनुशासन था, जिसका विरोध अज्ञानतावश खुद विश्वामित्र ने भी किया, लेकिन वे भी असफल हो गये थे। लेकिन लम्बी तपस्या के बाद जब विश्वामित्र को जब समझ आयी तो उसी अनुशासन के वाहक हो गये जिसका वे विरोध करते थे।

ऐसे में क्राइस्ट माणा गांव के उन लोगों के साथ थोलिंगमठ चले गये, जो कि माणा गांव से थोलिंगमठ नारायण की पूजा हेतु प्रतिवर्श पूजा सामाग्री ले जाते थे। चूँकि बौद्ध लामा जानते थे कि क्राइस्ट ही पूर्व जन्म में गौतम बुद्ध थे, इसलिए उन्होंने थोलिंगमठ

में क्राइस्ट को आध्यात्मिक प्रतिष्ठा प्रदान की। जिसका प्रतीक थोलीमठ में स्थित ईसा हॉल आज भी विद्यमान है। तिब्बत और देवभूमि के इस सीमांत में प्रचलित प्राचीन श्रुतियों के अनुसार यह प्रतीत होता है कि थोलिंगमठ में ईसा अपना दरबार लगाते थे। जिसमे वे हिन्दुस्तान से चुराकर ले जायी गयी धर्मग्रन्थों की अनेक पाण्डुलिपियों का अध्ययन करते रहे होंगे तथा अपने शिष्यों के साथ उस पर परिचर्चा भी करते रहे होंगे। क्योंकि तिब्बती बौद्ध लामा जो कि पूर्वजन्म की विद्या का ज्ञान रखते थे, उनको भी इस बात का ज्ञान था कि गौतम बुद्ध ने ही ईसा के रूप में जन्म लिया है। इसलिए भी थोलिंगमठ में भगवान नारायण की चतुर्भुज मूर्ति के सानिध्य में वे ईसा को बुद्ध के सदृश गद्दी लगाकर दरबार में सम्मान देते रहे। यहां ईसा ने कुछ साल तक वैदिक साहित्य का अध्ययन और भिक्षुओं के साथ परिचर्चा की। इसी कारण ईसा के वापस बदरिकाश्रम आने के बाद भी आज तक उस हॉल का नाम ईसा हॉल ;श्रलेंद्ध बना हुआ है।

क्राइस्ट से ईसा बनने की भी अनेक कहानियाँ हैं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि श्री बदरिकाश्रम मे ईषावास्योपनिषद् आदि उपनिषदों को हृदयंगम करने के कारण जो यश क्राइस्ट को प्राप्त हुआ उसी के कारण ऋषियों ने क्राइस्ट को जीजस की जगह ईसा या यीषु के नाम से सम्बोधित किया होगा। क्योंकि तिब्बती भाषा में 'ज' का उच्चारण में लोप हो जाता है। वैदिक संस्कृत, देववाणी में 'ज' का उच्चारण 'य' हो जाता है। इसलिए जीजस को ईसियस, यीशु, यीशा, ईसा, उच्चारित किया जाने लगा। इसीलिए भारत में क्राइस्ट को कोई भी जीजस क्राइस्ट नहीं पुकारता, बल्कि ईसामसीह पुकारता है। यही आधार ईसवी सन् का भी है। 'ईसवी सन्' का वास्तविक नाम 'ईसा सन्त' प्रतीत होता है। यही नहीं जिस प्रकार हिन्दू धर्म ग्रन्थों में श्लोकों और मंत्रों के क्रम होते हैं ठीक उसी प्रकार बाइविल में इस क्रम को 'मत्ति' नाम दिया गया है। भारत में मत से मति बना है जिसका तात्पर्य विचार या मन बुद्धि की प्रवृत्ति है आज भी भारत में किसी को व्यंगात्मक लहजे में कहते हैं मति मारी गयी, या तेरी मति खराब हो गयी। गांधी जी के प्रिय भजन की लाइन थी सबको सन्मति दे भगवान। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बाइबिल के नियम भारत के यम नियम (अष्टांग योग) से प्रवृत्त हैं जो कि व्यक्ति की मति को ऊर्ध्वगामी बनाते हैं।

जीजस क्राइस्ट के लिए अनेक लेखकों, विद्वानों और चित्रकारों ने जो चित्र प्रदर्शित किये है, उनमें गौतम बुद्ध या जीजस क्राइस्ट को हिन्दू सन्तों की तरह पोषाक पहने, ध्यानावस्थित अवस्था में और आभामण्डल के साथ प्रदर्शित किया है। यही नहीं क्राइस्ट को एक संत के रूप में वर्णित किया गया है। चूँकि सनातन धर्म में शान्ति के जिज्ञासु को अथवा उस परम् सत्ता में ध्यानावस्थित होकर जिसका चित्त शान्त हो गया हो उसे संत कहते हैं। सन्तों, महात्माओं और ऋषियों की तपःस्थली अथवा उद्गम स्थली श्रीबदरिकाश्रम ही रही है। ईसा के अनेक चित्रों से ज्ञात होता है कि वे शीत से बचने के लिए श्रीबदरिकाश्रम में ऊन के मोटे और परम्परागत स्थानीय लम्बे–चौड़े कपडे पहनते थे। ऐसी पोशाकें सिर्फ और सिर्फ हिन्दू सन्त महात्मा ही श्रीबदरिकाश्रम में पहनते थे। यहाँ यह भी तथ्य विचारणीय है कि बौद्ध धर्म में बौद्ध भिक्षु, लामा, तथागत होते हैं, वहाँ सन्त नहीं होते, सन्त के नाम पर उपाधि की परम्परा केवल हिन्दू सनातन धर्म में पायी जाती है। ईसा की मृत्यु के पश्चात् ईसा के अनुयायियों द्वारा ईसा को सन्त की उपाधि से विभूषित किया जाना, इस बात का प्रबल प्रमाण है कि क्राइस्ट वैष्णव धर्म में पूर्णतया रंग गये थे। इसलिए आज भी उनके अनुयायियों को सन्त की उपाधि से सम्मानित किया जाता है। यद्यपि शताब्दियों की दूरी के कारण सनातन सन्त और इसाई सन्तों के अर्थ परिभाषा में बहुत अन्तर आ गया है, तथापि दोनों का मूल तत्त्व ईसा के जीवन काल में एक ही था।

इस प्रकार अगर क्राइस्ट के पूरे जीवन दर्शन को देखा जाये तो वह श्रीबदरिकाश्रम के वैष्णव धर्म की यूरोपियन प्रतिकृति के अलावा कुछ भी नहीं है और क्राइस्ट समग्र रूप से बैथलहम में जन्मे वैष्णव सन्त प्रतीत होते हैं। चूँकि ईसा के 326 ई0 पूर्व सिकन्दर के आक्रमण से ही भारत पिछले 2300 साल से गुलाम रहा है। इसलिए आज भी शताब्दियों की गुलामी के कारण

भारतीय बुद्धिजीवियों की मानसिकता पाश्चात्य् अंधानुकरण के सिवाय कुछ नहीं है। यही कारण है कि भारतीय विद्वानों और चिन्तकों के द्वारा भारत में क्राइस्ट के प्रवास पर अभी तक कोई ठोस वैज्ञानिक, तथ्यपरक शोध–अनुसंधान नहीं हुए हैं। जबकि विश्व शान्ति व मानव एकता और आतंकवाद से लड़ने के लिए इस विशय पर गहन शोध अध्ययन की आवश्यकता है। यही नहीं भारतीय मनीषि जब आज भी जीजस क्राइस्ट को महावतारी बाबा के रूप में श्रीबदरिकाश्रम हिमालय में योगसाधनारत रहना बतलाते हैं, तो ऐसे में यह अध्ययन भारतीय दर्शन की विराट वैज्ञानिकता को जानने के लिए और भी महत्त्वपूर्ण स्रोत बन जाता है। बदरिकाश्रम में भगवान नारायण के नाभि कमल से उत्पन्न प्रजापति ब्रह्या ने यज्ञ के द्वारा सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार को उत्पन्न किया। तदन्तर सृष्टि सृजन हेतु ब्रह्मयजन गिरि पर तप कर यज्ञ के द्वारा सप्त ऋषियों का प्राकाट्य हुआ। जब वे भी ऊर्ध्वगामी हो गये तब प्रजापति ने एक सुन्दर स्त्री की रचना कर खुद उस पर मुग्ध हो गये। इस प्रकार स्त्री में माया का सृजन हुआ जिस माया के मोह पास में फंसने से जीव मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसकी शुरुआत भी खुद प्रजापति ब्रह्मा द्वारा माया के मोह पास में फंसने की विशादाग्नि में जल कर की गयी। तबसे श्री बदरिकाश्रम मानव मात्र के लिए तीर्थस्थली बन गया। बदरिकाश्रम देवताओं, ऋषियों और पितरों की उपासना का तीर्थ बन गया। यही कारण है कि मानवमात्र श्री बदरिकाश्रम में इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण हेतु पदापर्ण करता आ रहा है। जिसके अन्तर्गत व्यक्ति यहां गहन यौगिक ज्ञान और साधना के द्वारा पुनः परमात्ममय हो जाता है। अर्थात फिर जीव का पुनर्जन्म नहीं होता। लेकिन जो मनुष्य योग के इस मर्म को नहीं समझ पाता है वह योगी पुनर्जन्म को प्राप्त होता है जैसा कि भगवान श्री कृष्ण ने गीता में भी कहा है–

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

(गीता– 6/45–46)

जितने भी योगी, ऋषि–मुनि और तपस्वी हुए हैं वे समस्त श्री बदरिकाश्रम में पदार्पण और साधना द्वारा मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। लेकिन जो कोई योग मार्ग में प्रवृत्त होते हुए भी इस साधना के मर्म को नहीं समझ पाया और योग भ्रष्ट हो गया उसे पुनः कई जन्म तक भटकना पड़ा और अन्त में भी वह इस साधना के मर्म को जानकर ही मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। ऐसे ही एक योगी थे शाक्य मुनि, जो इस बदरिकाश्रम में तप करते रहे। परन्तु योग साधना के मर्म को न समझकर अथवा जल्दी पाने की चाह में अनुशासन की मर्यादा का अतिक्रमण कर गये, नतीजतन पुनर्जन्म को प्राप्त हुए। इनको पुनर्जन्म मिला लुम्बिनी के वन में और नाम मिला सिद्धार्थ। यही सिद्धार्थ पूर्व जन्म के संस्कारों के वशीभूत पुनः योग के मार्ग पर अग्रसर होते हुए श्री बदरिकाश्रम पहुंचे और लम्बे समय तक यहां साधना करते रहे, लेकिन उस परम तत्व को फिर भी नहीं समझ पाये, नतीजतन उन्हें यहां से वापस जाना पड़ा। लेकिन भगवान बदरीनारायण की कृपा देखिये कि वे परम रहस्य को न जानकर भी बुधत्त्व को प्राप्त हुए और बाद में गौतम बुद्ध के नाम से जाना जाने लगे।

जब तक जीवात्मा मुक्ति को प्राप्त नहीं होती तब तक वह जन्म–मरण के बंधन में बंधी रहती है, नतीजतन शाक्यमुनि ने बुद्ध के रूप में शरीर त्याग लेने के बाद पुनः लगभग 500 साल बाद वैतुलहम में क्राइस्ट के रूप में जन्म लिया। लेकिन यहां उन्हें क्रूस पर चढ़ा कर मृत्युदण्ड दिया गया। क्राइस्ट के जितने पाप थे उनका हरण उन्हें क्रूस पर लटकाने वाले लोगों ने कर लिया। नतीजतन हत्यारे पापी हो गये और क्राइस्ट पाप मुक्त। जब पापमुक्त जीवात्मा के पास सिर्फ परमात्मा की धारणा शेष रह गयी, तब वह जीवात्मा श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर पुनः महावतारी बाबा के रूप में प्रकट होती है, जिनके न मां का पता है, न पिता का, न जन्मस्थान का। वे इन्द्रिय विहीन इस हिमालय में आज भी भगवान नारायण की आराधनारत हैं। ऐसे योगी नित्य श्वेतद्वीप बदरिकाश्रम में भगवान नारायण का दर्शन पूजन करते हैं। वे आज भी ज्ञान पिपासुओं को दर्शन देते हैं, लेकिन ऐसा दर्शन दुर्लभ

है। कारण है कि ये महात्मा तो दर्शन देना चाहते हैं, परन्तु उनका दर्शन पाने की पात्रता लोगों में है नहीं। इस बारे में महाभारत के दानधर्म पर्व में संकेत दिया गया है। ऐसे मनीषियों को नमन् शत्–शत् नमन्।

पश्चिम द्वारा ईसा के भारत प्रवास को नकारे जाने के राजनीतिक निहितार्थ-

ईसा मसीह अपने अज्ञात वर्षो 12–30 के मध्य भारत आये थे तथा उन्होने यहॉ के ऋषियों से भारतीय दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया तथा पुनः पश्चिम चले गये तथा अपने अर्जित ज्ञान को सरल भाषा में वहॉ के लोगों में प्रचारित किया किन्तु प्रश्न उठता है कि आखिर पश्चिमी विद्वान इस बात को मानने के लिये क्यों तैयार नहीं है? तो इसके कई कारण है।

1. ईसा मसीह के भारत प्रवास को नकारने का सबसे पहला कारण यह रहा कि पश्चिमी विद्वान भारतीय गुलामों के दर्शन को स्वीकार करना अपनी शान के खिलाफ मानते रहे हैं। क्योंकि 326 ई0 पू0 सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था तथा भारत के काफी क्षेत्र को विजित कर लिया था।

2. 190 ई0 पू0 में डेमिट्रियस ने भारत पर आक्रमण किया इसके बाद लगभग 1800 वर्षो तक भारत किसी न किसी विदेशी राष्ट्रों का गुलाम रहा यह सबको विदित है, जिस कारण से पश्चिमी लोग इसे गुलाम देश कहने लगे। इसलिये अगर पश्चिमी लोग ये स्वीकार करते कि ईशु मसीह ने भारत में ज्ञान प्राप्त किया तो उन्हे ये अपने सम्मान के खिलाफ लगेगा।

3. इस बात को वे स्वीकार करने के पीछे उन्हें भय था कि भारत के लोगों द्वारा अपनी संस्कृति के इतने महान होने की बात अगर उन्हें पता चलती है तो उनका मनोबल उठ जायेगा तथा जिस प्रकार वे भारतीयों पर शासन कर रहे थे वह शासन करना मुश्किल हो जायेगा इसलिये भी उन्होंने कभी भी इस बात को प्रचारित नहीं किया कि यीशु मसीह भारत से ज्ञान प्राप्त करके आये थे।

4. भारत एक समृद्ध देश था, भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसलिये पश्चिमी लोगों को भय था कि यह समृद्ध राष्ट्र कहीं भविष्य में एक शक्तिशाली राष्ट्र बनकर उनके लिये खतरा न बने, इसलिये भी उन्होंने भारतीय दर्शन को दबाने का अथक प्रयास किया तथा अपने दर्शन को बढ़ा–चढ़ा कर कर प्रस्तुत किया, जिससे भारतीय लोगों में गुलामी की मानसिकता को बनाये रखा जा सके।

5. इसाई चाहते थे कि भारतीयों को इसाई दर्शन की ओर प्रेरित किया जाय, जिसमें वे काफी हद तक कामयाब भी हुए, क्योंकि भारत के महान सनातन जीवन दर्शन को छोड़ कई भारतीयों ने ईसाई धर्म अपनाया।

6. भारतीयों द्वारा उचित मंचों पर अपना पक्ष उचित ढ़ंग से न रखने के कारण भी ईसा मसीह के भारत प्रवास को स्वीकार नहीं किया गया। क्योंकि विदेशियों द्वारा भारतीयों का इतना अधिक शोषण किया गया कि वे कभी भी उन्मुक्त मन से चिन्तन करने को प्रेरित नहीं हो पाये।

7. 1893 में जब स्वामी विवेकान्द ने शिकागो में धर्म पर अपना भाषण दिया तो विश्व को भारतीय दर्शन के आगे घुटने टेकने पड़े। किन्तु एक गुलाम राष्ट्र के कारण इस विषय पर कभी भी विश्व स्तर पर बहस नहीं की गयी। इसलिये भारतीय विद्वानों द्वारा अपना पक्ष प्रबल तरीके से न रखने के कारण भी पश्चिमी लोग भारतीय दर्शन को हेय समझते रहे।

8. साम्राज्यवादी सोच के कारण भी अंग्रेजों ने यीशु के भारत प्रवास को नकारने का प्रयास किया। 19 वीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति हुई और उद्योगों की अधिकता के कारण पश्चिम को अधिक कच्चेमाल की आवश्यकता पड़ी, इसकी पूर्ति के लिये उन्होने एशिया अफ्रीका के राष्ट्रों को अपना उपनिवेश बनाना प्रारम्भ किया तथा अपने देश में निर्मित माल के लिये बाजार के रूप में भी उपनिवेशों का प्रयोग किया। ऐसी स्थिति में वे भारत में यीशु मसीह के प्रवास को स्वीकार करते तो उन्हें भय था कि भारतीय दर्शन से शिक्षा ग्रहण किये यीशु के ये शिष्य हम पर शासन कर रहे हैं। इस बात का भारतीयों को बोध होगा तो वे अपनी आजादी के लिए प्रयासों को तीव्र कर सकते हैं।

9. इसके अतिरिक्त पश्चिमी लोग व्यक्तिगत सुख को सामाजिक उत्तरदायित्वों से अधिक महत्व देते थे। किन्तु भारत की संस्कृति 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' और त्यागमय

जीवन जीने की रही है। यही कारण है कि आत्मबल के स्तर पर भारतीय नागरिक पश्चिमी नागरिकों से काफी आगे थे। उच्च ईश्वरीय आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भारतीय नागरिक कठिन एवं जटिल जीवन को भी स्वीकार कर लेते थे, किन्तु पश्चिम के सुविधाभोगी रहन–सहन के कारण वे इसे पूर्ण रूप से स्वीकार करने मे अक्षम थे, इसी विफलता को छुपाने के लिये उन्होने इसे रूढ़िवादी करार दिया तथा यह भी अस्वीकार कर दिया कि यीशु भारत आये।

10. अंग्रेजों ने भारतीय रियासतों के एकीकरण के भय से भी यीशु के भारत प्रवास को छुपाया। क्योंकि अगर व इसे मान लेते तो भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ मानी जाती तथा इसके मूल्य भी, किन्तु उन्होंने अपनी संस्कृति और मूल्यों को श्रेष्ठ दिखाया और उसके बल पर भारतीय रियासतों को सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक आधार पर एक नहीं होने दिया। क्योंकि वे जानते थे अगर ऐसा होता है तो यहॉ फूट डाल कर शासन करना मुस्किल हो जाएगा।

11. यद्यपि भारतीय समाज अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यो में संलग्न रहता था तथापि इन्हें पूरा करने की रीति समाज के कुछ प्रबुद्ध वर्ग को ही आती थी। अनेक प्रकार के मंत्र–तंत्रों के इस कठिन वातावरण को अपनाना हर किसी के बस में नहीं था। इसलिये पश्चिमी लोगों ने इसे नकार दिया तथा अपने को श्रेष्ठ साबित करने हेतु यीशु के भारत प्रवास को छुपाया।

12. यह भी एक प्रमाणिक सत्य ही है कि पश्चिमी सभ्यता के द्वारा सदा ही गोरे–काले का भेद किया गया है। स्वयं को अर्थात गोरों को विश्व की उच्चवर्गीय सभ्यता बताया। ईसाई स्वयं को अन्य जातियों से उच्च समझते थे और उनका मानना है कि संसार की कोई भी अन्य जाति उनसे अधिक मानसिक क्षमता वाली एवं सभ्यता की प्रतीक नहीं हो सकती। साथ ही वे यह तर्क भी देते हैं कि ईसा मसीह स्वयं ही एक उच्चवर्गीय विद्वान एवं प्रभु के पुत्र थे, उन्हें ज्ञान की प्राप्ति के लिये भारतीय प्रवास की आवश्यकता नहीं पड़ सकती थी।

13. पश्चिमी सभ्यता का मानना यह भी है कि यदि ईसा ने भारतीय प्रवास कर आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया होता तो आज का वर्तमान दौर शायद भौतिकवादी ना होता, वर्तमान समय में आध्यात्मिकता केवल पुस्तकों में सिमट कर रह गई है। किन्तु सत्य यह है कि इस आध्यात्मिकता को स्वयं अंग्रेजों ने समाप्त किया। 1835 में मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति की शुरुआत करते समय स्वयं अपने पिता से कहा था कि इस देश में मैं दो सालों से देख रहा हूँ कि कोई गरीब नहीं है, कोई भिखारी नहीं है, कहीं ताले नहीं लगे रहते इसलिये इस देश को हम कभी भी समाप्त नहीं कर सकते, क्योंकि यहॉ दूसरे को लूटा नहीं जाता, बल्कि दूसरे कि मदद की जाती है, किन्तु मैं इस देश में एक ऐसा बीज बोने जा रहा हूँ अगर वह काम कर गया तो यह देश खुद व खुद समाप्त हो जायेगा।

पश्चिम द्वारा ईसा के भारतीय प्रवास को स्वीकारे जाने के संभावित परिणाम

1. अगर पश्चिमी विद्वान इस बात को स्वीकार करते है तो सबसे पहला प्रभाव तो यह होगा कि यह सिद्ध हो जायेगा कि ईसाई तथा बौद्ध धर्म सनातन धर्म की एक शाखा है।

2. विश्व शान्ति के लिए हिन्दू बौद्ध तथा ईसाईयों में एकता स्थापित करना काफी आसान हो जाएगा। साथ ही यह सिद्ध होगा कि पूरी बाइबिल, गीता आदि सनातन धर्मग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति मात्र है तथा हिन्दू, बौद्ध और ईसाई धर्म का स्त्रोत एक ही है।

3. वर्तमान समय में विश्व में जो धार्मिक, राजनीतिक, बौद्धिक और सामाजिक वैमनस्य फैला हुआ है। इस्लामिक स्टेट जैसे अनेक चरमपंथी संगठनों की वजह से विश्व के अस्तित्व पर आतंकवाद का जो खतरा मंडरा रहा है, उससे निपटने के लिये हिन्दू, बौद्धों, और ईसाईयों की यह एकता मील का पत्थर साबित होगी।

4. ईसाई धर्म की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को विश्व भर में चुनौती मिलेगी और गोरी जाति के दायित्व **(White man's burden)** के नाम पर प्रचलित सिद्धान्त का खोखलापन सिद्ध होगा जो पाश्चात्य देशों के राजनीतिक और आर्थिक साम्राज्यवाद का मूल मंत्र रहा है इसी आधार पर ही उन्होंने लगभग 400 सालों तक भारत पर शासन किया साथ ही एशिया तथा अफ्रीका के अनेक देशों पर भी कई वर्षों तक शासन किया और आज भी

अपने इस प्रभाव को दिखाने का प्रयास करते है।

5. चर्चित पूर्व अमेरिकी विदेश सचिव हेनरी किसींजर ने अपनी पुस्तक ;वतसक वतकमतद्ध में भागवत गीता की सर्वकालिक श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। उन्होने कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' को मैक्यावली के 'द प्रिन्स' से अधिक मूल्यवान ग्रन्थ बताया है। 21 नवम्बर 2014 को ज्पउमे वि पदकपं के सम्पादकीय पृष्ठ लेख के अनुसार किसींजर ने मानव सभ्यता की जननी भारत को बताया है। भारत से ईसामसीह का सम्बन्ध सिद्ध होने पर इस मान्यता को और बल मिलेगा।

6. व्यापक पैमाने पर फैले धर्मान्तरण या घर वापसी का दुःश्चक्र खत्म होगा। अभी तक ईसाई मिशनरियों द्वारा गैर ईसाईयों का ईसाई धर्म में मतान्तरण करते समय उनको थ्अमक ; जिनका उद्धार हो गया है) घोषित किया जाता है। यानी जिसने ईसाई धर्म अपना लिया उसे ईसा ने बचा लिया है और बाकी का उद्धारक कोई नहीं है। ये भावना तथा हिन्दुओं द्वारा घर वापसी अर्थात जिन लोगों ने किसी दबाव, या अन्य किसी कारणों से अन्य धर्म अपना लिया है, उनका पुनः हिन्दू धर्म में वापस लाने की प्रक्रिया, ऐसे धर्मान्तरण की आवश्यकता नहीं रहेगी और इस आधार पर होने वाले साम्प्रदायिक तनावों से मुक्ति मिलेगी।

7. भारत में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा व्यवस्था पर ईसाई शिक्षण संस्थानों की पकड़ है और जिस प्रकार शिक्षण सस्थानों में विद्यार्थियों को भ्रमित करके ईसाई धर्म को सर्वोच्च सिद्ध किया जाता है ऐसे प्रयासों को भी धक्का लगेगा।

8. वर्तमान समय में सनातन धर्म में जो अवैज्ञानिकता आ गयी है उनका स्पष्ट पता चल जायेगा और सनातन धर्म की वैज्ञानिकता को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जायेगा।

9. उत्तराखण्ड तथा बदरीनाथ ईसाई व बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल के रूप में विकसित होंगे तो भारत व चीन विश्व के दो सबसे बड़े जनसंख्या वाले तथा बड़ी अर्थव्यवस्थाओं वाले देश आपस में जुड़ जायेगें, जिससे इन दोनों देशों खासकर उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन होगें और इनकी अर्थव्यवस्था काफी मजबूत होगी।

10. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत और चीन के बीच जो वैमनस्य बढ रहा है उसमें कमी के आसार भी उपयुक्त बातों के सिद्ध होने से नजर आते है। क्योंकि बौद्धों की सबसे बडी संख्या चीन तथा हिन्दुओं की भारत में निवास करती है तथा दोनों की जनसंख्या को मिलाकर विश्व की 1/3 जनसंख्या होती है और एक तिहाई जनसंख्या जब आपस में मैत्री भाव से रहेगी तो विश्व की अन्य बडी महाशक्तियाँ भी एशिया की तरफ बुरी दृष्टि डालने का प्रयास नहीं करेगी और भारत एक महाशक्ति के रूप में उभरेगा। तथा भारत का प्राचीन काल में जो विश्व गुरु का स्थान रहा हैं वह पुनःउसे प्राप्त होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Holger Kersten : Jesus lived in India. penguin books india 1983
2. The lost Years of Jesus -The Life of saint Issa : Notovitch
3. The lost Years of Jesus -The Life of saint Issa : Notovitch
4. The lost Years of Jesus -The Life of saint Issa : Notovitch

5. नया नियम, बाइबिल सोटाइटी ऑफ इंडिया, मत्ति 16 (मरकुस 8:31–33, लूका 9:22) (मरकुस 9:30–32, लूका 9:43–45) (मरकुस :32, लूका 18:31–34) मत्ति 4,5 (मरकुस 9:50) (लूका 14:34,35)

6. दण्डी स्वामी शिव बोधाश्रम : श्री गुरुवंशपुराण

7. नया नियम, बाइबिल सोटाइटी ऑफ इंड़िया, मत्ति 27 (मरकुस 15:6–15, लूका 23:13–25, युहन्ना 18:39,19:42)

8. लिंग पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर 2014

9. (1) हजरत मिर्जा गुलाम अहमद, जिजस इन इंड़िया, इस्लाम इन्टरनेशनल पबलिकेशन लि0
(2) निकोलस नोटोविच्, दि अन नोन लाइफ ऑफ जीजस, इण्ड़ो अमेरिकन बुक कम्पनी
(3) जे0 ड़ी0 सेम, वियर ड़िड जिजस ड़ाई,
(4) जोर्ज वुल्फ, पैरलेल् टिचिंग इन हिन्दूस्म एंड क्रिंस्नेटी आदि।

*****